प्राकृत सुभाषित-परम्परा एवं श्रावक जीवन-मूल्यः आचार्य वसुनन्दि कृत 'सज्जन-वचन-विलास' (सज्जण-वयण-विलासो) का सांगोपांग अनुशीलन

लेखकः डॉ. आशीष जैन आचार्य 'शाहगढ़'
(राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त)
महामंत्री, प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन
*संयुक्त मंत्री — अ.भा.दि. जैन शास्त्रिपरिषद्

शोध-सार

प्राकृत जैन सुभाषित एवं नीति -साहित्य भारतीय नैतिक चेतना और व्यावहारिक जीवन -दर्शन का अनुपम स्रोत रहा है। जैन आचार्यों ने आध्यात्मिक साधना के समानांतर लोक -कल्याण, नैतिक आचरण और गृहस्थ -जीवन के व्यावहारिक कर्तव्यों का सुव्यवस्थित निरूपण किया है। आचार्यश्री वसुनन्दिजी मुनिराज विरचित **'सज्जन-वचन-विलास' (सज्जण-वयण-विलासो)** इस दृष्टि से एक अद्वितीय व्यावहारिक नीति -ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में ८४ गाथाओं के माध्यम से एक आदर्श मानव, गृहस्थ, विद्यार्थी, शासक और साधक के कर्तव्यों, सद्गुणों एवं मर्यादाओं को रेखांकित किया गया है। प्रस्तुत शोध-आलेख में ग्रन्थ की मूल विषय-वस्तु, गृहस्थ धर्म, नीतिपरक उपदेशों, दार्शनिक आधारों और इसके साहित्यिक -भाषिक वैशिष्ट्य का सांगोपांग , परिमार्जित एवं उच्चस्तरीय अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रन्थ आध्यात्मिक शुचिता के साथ -साथ सामाजिक समरसता और मानवीय गरिमा के संरक्षण का मार्ग प्रशस्त करता है।

मुख्य शब्द :- सज्जन-वचन-विलास, सज्जण-वयण-विलासो, आचार्यश्री वसुनन्दिजी महाराज , प्राकृत सुभाषित, नीति-साहित्य, श्रावक धर्म, व्यावहारिक जैन दर्शन, नैतिक जीवन-मूल्य।

❖ प्रस्तावना

जैन वाङ्मय का मुख्य उद्देश्य यद्यपि मोक्षमार्ग का निरूपण और आत्मकल्याण है , तथापि आचार्यों ने इस मार्ग को सुलभ और व्यावहारिक बनाने के लिए समाज , राष्ट्र और गृहस्थ-जीवन को सुव्यवस्थित करने वाले नीतिपरक ग्रन्थों का भी प्रचुर मात्रा में सृजन किया है। प्राकृत भाषा में सुभाषित और नीति -काव्य की एक सुदीर्घ परम्परा रही है , जिसमें 'गाहा सत्तसई' और 'वज्जालग्गं' जैसे ग्रन्थ लोक-व्यवहार की शिक्षा देते हैं। इसी परम्परा में आध्यात्मिक धरातल पर नैतिक मूल्यों की

पुनर्प्रतिष्ठा करने वाले ग्रन्थों में आचार्य वसुनन्दि कृत **'सज्जन-वचन-विलास' (सज्जण-वयण-विलासो)** का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

आचार्यश्री वसुनन्दिजी महाराज ने इस ग्रन्थ की रचना तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के केवलज्ञान वर्ष 2830 में , पवित्र अतिशय क्षेत्र **'अहिच्छत्र'** में की थी। इस ग्रन्थ का मूल ध्येय आध्यात्मिक शुचिता की नींव पर एक सुदृढ़ और नैतिक सामाजिक ढांचे का निर्माण करना है। ग्रन्थ की प्रत्येक गाथा मानव-जीवन को परिष्कृत करने वाले सूत्रों से ओत-प्रोत है।

❖ 'सज्जन-वचन-विलास' का स्वरूप एवं संरचनात्मक संगठन

'सज्जन-वचन-विलास' एक लघु -काय किन्तु अत्यंत सारगर्भित प्राकृत रचना है , जिसमें कुल **८४ गाथाएँ** निबद्ध हैं। ग्रन्थ का प्रारम्भ सिद्ध , अरिहन्त, यति-साधु, जिनधर्म और जिनागम की भावभीनी वन्दना रूप मंगलाचरण से होता है। ग्रन्थ की संरचना व्यावहारिक उपदेशों से प्रारम्भ होकर क्रमशः सामाजिक आदर्शों , पारिवारिक सम्बन्धों , व्यक्तिगत नैतिकता और अंततः आध्यात्मिक परिणति (समाधिमरण) की ओर अग्रसर होती है। ग्रन्थ के वर्ण्य -विषयों के आधार पर विषय -विभाजन निम्न प्रकार से किया गया है:-

1. जीवन का लक्ष्य एवं मंगलाचरण: **गाथा 1 से 5**
2. नैतिक सामंजस्य एवं दाम्पत्य जीवन: **गाथा 6 से 9**
3. सज्जनता एवं उत्तम मनुष्य के लक्षण: **गाथा 10 से 15**
4. आदर्श राजधर्म (राजनीति): **गाथा 16 से 18**
5. श्रेष्ठ जीवन के व्यावहारिक सूत्र: **गाथा 19 से 28**
6. पाप-निषेध एवं दुःख के कारण: **गाथा 29 से 30**
7. परोपकार, अहिंसा एवं लोक-कल्याण: **गाथा 31 से 38**
8. नैतिक त्रुटियाँ एवं विवेकपूर्ण आचरण: **गाथा 39 से 53**
9. गुणों की महिमा एवं सामाजिक मर्यादा: **गाथा 54 से 75**
10. जीवन के चार चरण एवं शोभा-निरूपण: **गाथा 76 से 82**
11. अंतिम मंगलाचरण एवं प्रशस्ति: **गाथा 83 से 84**

❖ प्रमुख वैचारिक एवं दार्शनिक आयाम

- **सच्चे विद्यार्थी का आदर्श और विद्या-अर्जन का लक्ष्य**

शिक्षा के क्षेत्र में केवल उपाधि या मान -सम्मान अर्जित करना विद्या का लक्ष्य नहीं है। आचार्यश्री वसुनन्दिजी महाराज ने सच्चे विद्यार्थी के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है :-

जो विज्जत्थी कंखी, सुक्खला- सुगुण- अप्पसुहसंतीणं।
पेस्सदि माणवेमाणं, तणुसुहं खणिगलब्धिं सो ण॥२॥

भावार्थ :- जो विद्यार्थी उत्तम गुणों , आत्मसुख और परम शान्ति की आकांक्षा रखता है , वह मान-अपमान, शारीरिक सुख अथवा क्षणिक भौतिक उपलब्धियों की ओर दृष्टिपात नहीं करता।

यह गाथा जैन ज्ञान -मीमांसा के उस सिद्धान्त को पुष्ट करती है जहाँ ज्ञान को केवल आजीविका का साधन न मानकर 'आत्मानुभूति' का माध्यम माना गया है। जो साधक या विद्यार्थी क्षणिक मान-अपमान में उलझ जाता है, वह ज्ञान के अगाध सिन्धु में गोता नहीं लगा सकता।

- **व्यावहारिक सुख और जीवन का मार्ग**

जैन दर्शन अत्यंत व्यावहारिक है ; वह मोक्ष के साथ -साथ संसारी जीव के सुखद जीवन के सोपानों को भी नहीं नकारता। गाथा 3 में सुख प्राप्ति के व्यावहारिक मार्ग का निरूपण है :-

पालेज्ज सुहकंखगो, पंडिदुवएस-इंदियसंयमं च।
करेज्ज पूयं दाणं, साहुसेवं विमलभावेहिं॥३॥

भावार्थ:- सुख की आकांक्षा रखने वाले मनुष्य को बुद्धिमान पुरुषों के उपदेशों का अनुसरण और इन्द्रिय-संयम का पालन करना चाहिए। साथ ही , निर्मल भावों से देव -पूजा, दान और साधु -सेवा करनी चाहिए।

यहाँ 'विमल भाव ' (शुद्ध अभिप्राय) पर सर्वाधिक बल दिया गया है। जैन दर्शन में क्रियाकाण्ड की अपेक्षा भावों की शुद्धि को ही कर्म -निर्जरा और लौकिक -पारलौकिक सुख का कारण माना गया है। दान , पूजा और सेवा तभी फलदायी हैं जब उनके पीछे कषाय रहित निष्कपट भाव हों।

- **विरोधाभासी सद्गुणों का सामंजस्य और महानता**

संसार में सामान्यतः वैभव आने पर अहंकार और निर्धनता आने पर संकीर्णता आ जाती है। परन्तु महान पुरुषों में विपरीत परिस्थितियों में भी सद्गुणों का अद्भुत सन्तुलन दिखाई देता है :-

णिद्धणस्सुरालत्तं, धणिगस्स लोहणिवित्ती पसंसा।
सूरस्स खमाभावो, विहवसंपण्णस्स विरत्ती॥६॥

भावार्थः- निर्धन व्यक्ति की उदारता (दानशीलता), धनी व्यक्ति की लोभ से निवृत्ति , शूरवीर का क्षमाभाव और वैभव से सम्पन्न व्यक्ति की विरक्ति (अनासक्ति) अत्यंत प्रशंसनीय होती है।

यह गाथा अपरिग्रह और अनेकान्त दृष्टि को व्यावहारिक जीवन में उतारने का निर्देश देती है। बलवान का क्षमाशील होना और समृद्ध का अनासक्त होना ही सच्ची वीतरागता का गृहस्थ स्तर पर अभ्यास है।

- **दाम्पत्य जीवन और पारिवारिक समरसता के सूत्र**

पारिवारिक विघटन और मानसिक तनाव के इस युग में आचार्यश्री वसुनन्दिजी महाराज द्वारा दिए गए गृहस्थ जीवन के सूत्र अत्यंत प्रासंगिक हैं:-

मणभेदबुद्धि अहम्भावो णेव कयाइ दंपतीइ।
परोप्परम्मि सहाओ, णेहविद्धिगारगो णिच्चं॥७॥
परोप्परे मणभेदं, विम्हरित्तु सुमेरि परोवयारं।
गुणचिंतणेण सुहाए, जाणेज्ज मणोभावं॥८॥

भावार्थ :- दम्पति (पति-पत्नी) के बीच कभी भी मनभेद (मनोमालिन्य), संकीर्ण बुद्धि और अहंकार का भाव नहीं होना चाहिए। उन्हें सदा परस्पर सहायक और स्नेह को बढ़ाने वाला होना चाहिए। पति -पत्नी को सुखद जीवन के लिए परस्पर हुए मतभेदों को भुलाकर एक -दूसरे के उपकारों का स्मरण करना चाहिए और एक-दूसरे के सद्गुणों का विचार करते हुए मनोभावों को समझना चाहिए।

यह जैन धर्म के 'अनेकान्तवाद' का कौटुम्बिक प्रयोग है। जब दो व्यक्ति भिन्न -भिन्न दृष्टिकोण (नय) रखते हों, तो वहाँ अहंकार का परित्याग और दूसरे के उपकार तथा गुणों का स्मरण (गुणानुवाद) ही सम्बन्धों में मधुरता ला सकता है।

- **सज्जन, उत्तम मनुष्य एवं प्रतिष्ठित नरपुंगव के लक्षण**

ग्रन्थ का नाम 'सज्जन-वचन-विलास' होने के कारण इसमें सज्जनता की अनेकों कसौटियों का विस्तार से वर्णन है:-

1. **सज्जन (गाथा 11):-** जो निष्काम भाव से जिनेन्द्र देव की भक्ति करता है , बिना किसी स्वार्थ के परोपकार और सहायता करता है, सभी जीवों पर दया रखता है और धर्मात्माओं के प्रति वात्सल्य भाव रखता है।

2. **उत्तम मनुष्य (गाथा 12):** सभी जीवों से मैत्री भाव , अपने शुद्ध आत्म -स्वरूप को प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा, गुणीजनों के प्रति अनुराग और आस्तिक भाव (देव-शास्त्र-गुरु पर दृढ़ श्रद्धा)।

3. **प्रतिष्ठित मनुष्य (गाथा 14):** जिसके मन में दया , वचनों में सत्यता है , जो आत्म -अनुशासन रखता है और लोक-व्यवहार में कुशल तथा सबका हितैषी है ।

४. **नरपुंगव (गाथा 15):** जो दूसरों को दोष नहीं देता , गुणों की उपेक्षा नहीं करता , धर्मात्माओं का अपमान नहीं करता, इन्द्रिय विषयों में अनासक्त है और निष्कपट है।

- **आदर्श राजधर्म और राष्ट्र-कल्याण की संकल्पना**

आचार्यश्री वसुनन्दिजी महाराज केवल आध्यात्मिक शिक्षक नहीं थे , वरन् एक सजग राष्ट्र -द्रष्टा भी थे। उन्होंने आदर्श राजा और सुशासन की जो रूपरेखा गाथा १६ -१८ में प्रस्तुत की है , वह वर्तमान राजनीति के लिए भी अनुकरणीय है:-

- **राजा का प्रजा के प्रति व्यवहार:-** राजा प्रजा के लिए पिता के समान रक्षक हो।
- **न्यायप्रियता:-** राजा को साक्षात् न्यायमूर्ति और पक्षपात से सर्वथा रहित होना चाहिए।
- **इन्द्रिय-संयम:-** शासक स्वयं इन्द्रिय -संयमी हो क्योंकि असंयमी राजा राष्ट्र का विनाश कर देता है।
- **शोभा की उपमा:-** जिस प्रकार चन्द्रमा में शीतलता, सूर्य में प्रकाश और पुष्प में सुगन्ध स्वभाव से होती है , वैसे ही राजा में धर्म -रक्षा का गुण होना चाहिए। यह धर्मरक्षक राजा सज्जनों के बीच रत्न के समान सुशोभित होता है।
- **निषेध:-** पक्षपात करने वाला राजा , शील रहित स्त्री , माता-पिता का विरोध करने वाली सन्तान और घर में क्लेश उत्पन्न करने वाला मनुष्य समाज में उसी प्रकार अशोभनीय हैं जैसे एक आँख वाला (काना) व्यक्ति।
- **श्रावक के आचरण सम्बन्धी निषेध एवं अतीन्द्रिय रक्षा**

आचार्यश्री वसुनन्दिजी महाराज ने श्रावक के लिए कुछ अत्यंत हानिकारक पापों और प्रवृत्तियों के निषेध का उल्लेख किया है, जो गृहस्थ को सन्मार्ग पर बनाए रखते हैं:-

अ) पाप और दुःख के प्रमुख कारण (गाथा 29-30):

1. **परस्त्री गमनः-** इसे परलोक बिगाड़ने वाला और महापाप का कारण कहा गया है।

2. **अनछने जल का पानः** त्रस जीवों की हिंसा के कारण इसे घोर पाप माना गया है।

3. **रात्रिभोजनः** जैन आचार के अनुसार रात्रि में सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति के कारण भोजन का निषेध किया गया है ।

4. **पर-पीड़ाः** दूसरों की खड़ी फसलों को नष्ट करना और मूक प्राणियों को कष्ट देना भी पाप की श्रेणी में है।

५. **साधु-अपमानः** आत्मज्ञानी संतों का अपमान और राजाज्ञा का उल्लंघन गृहस्थ जीवन में सबसे बड़े मानसिक और सामाजिक दुःख का कारण बनता है।

ब) तीन सबसे घातक दोष (गाथा 39):

आचार्यश्री ने मानव जीवन को नष्ट करने वाले तीन प्रमुख दोषों की उपमाओं के माध्यम से उत्कृष्ट व्याख्या की है:-

- **परस्त्री संसर्गः** यह दहकती हुई अग्नि की पुतली (आग की मूरत) के समान घातक है।
- **पर-द्रव्य लोभ (दूसरों के धन की लालसा):** यह विषैले काले सर्प के समान है जो जीवन को डस लेता है।
- **अन्याय-अनीति का मार्गः** यह हलाहल विष के समान है जो आत्म-कल्याण के भावों को मार देता है।

इन तीनों का परित्याग करने वाला मनुष्य ही वास्तविक और शाश्वत सुख का अधिकारी होता है।

- **जीवन के चार चरण और आत्मिक शोभा का आदर्श**

जीवन के समय नियोजन और उसकी सार्थकता को आचार्य वसुनन्दि ने गाथा ७६ में अत्यंत व्यावहारिक रूप से वर्गीकृत किया है:-

सेसवे णाणज्जणं, जोव्वणे गम्भीरं सु- उच्छाहो।
***पोढे पुण्णकंख, समाधिमरण- मंते सुहदं॥७६ ॥*[४०]**

भावार्थः- मनुष्य को शैशव (बचपन) में ज्ञान का अर्जन करना चाहिए , यौवन (जवानी) में गम्भीरता और धर्म-कार्यों के प्रति सच्चा उत्साह रखना चाहिए , प्रौढ़ावस्था में पुण्य कार्यों की आकांक्षा रखनी चाहिए और जीवन के अंत में समाधिमरण का वरण करना चाहिए; यही परम सुखद है।

यह गाथा जैन दर्शन के पुरुषार्थ -चतुष्टय और जीवन की पूर्णता की वैज्ञानिक व्यवस्था को दर्शाती है। यदि प्रारम्भ में ज्ञान का अर्जन न हो , जवानी में असंयम हो , तो जीवन का अंत समाधिमय नहीं हो सकता। अंत भला तो सब भला के सिद्धान्त के अनुसार 'समाधिमरण' को ही गृहस्थ और मुनि जीवन का अंतिम साध्य माना गया है।

❖ पारिभाषिक शब्दावली और उनका तात्त्विक अर्थ

'सज्जन-वचन-विलास' ग्रन्थ में प्रयुक्त कुछ प्रमुख प्राकृत पारिभाषिक शब्दों और उनके दार्शनिक महत्त्व को इस तालिका के माध्यम से समझा जा सकता है :-

क्र. सं.	प्राकृत शब्द	संस्कृत रूपान्तर	हिन्दी अर्थ एवं दार्शनिक संदर्भ	सन्दर्भ गाथा
१	**सम्मेत्ताइ**	सम्यक्त्वादि	सम्यग्दर्शन आदि आत्मिक गुण	1
२	**विमलभावेहिं**	विमलभावैः	निष्कषाय और राग-द्वेष रहित निर्मल परिणामों से	3
*	**णिकंख**	निष्कांक्ष	बिना किसी लौकिक आकांक्षा या फल की इच्छा के	11
४	**अहम्भावो**	अहम्भावः	अहंकार, जो दाम्पत्य और साधना दोनों का विनाशक है	7
५	**अयाचगवित्ती**	अयाचकवृत्तिः	स्वाभिमानी जीवन, किसी के सामने हाथ न फैलाना	25
६	**समाहिमरणं**	समाधिमरणम्	जीवन के अंत में समताभाव पूर्वक शरीर का त्याग करना	25,76
७	**तव-संजम**	तपःसंयमः	कषायों और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना	28,40
८	**वच्छल्लं**	वात्सल्यम्	धर्मात्माओं और दीन-दुखियों के प्रति निष्कपट स्नेह	11,20

❖ भाषिक एवं साहित्यिक वैशिष्ट्य

- **भाषिक सौन्दर्य**

- **शौरसेनी प्रभावित प्राकृतः-** इस ग्रन्थ की भाषा प्राकृत सुभाषितों की उत्कृष्ट शौरसेनी शैली से प्रभावित है, जिसमें सरलता और गेयता का अद्भुत मिश्रण है।
- **सूत्रात्मक शैली :-** ग्रन्थकार ने गाथा जैसे संक्षिप्त छंद में गंभीर से गंभीर दार्शनिक और व्यावहारिक सत्यों को समाहित कर दिया है। जैसे , *'सया सुही संतोसी '* (संतोषी सदा सुखी रहता है)।

- **साहित्यिक अलंकार एवं उपमान-योजना**

आचार्यश्री वसुनन्दिजी महाराज ने अपनी बात को समझाने के लिए अनेक लौकिक और प्रकृति-प्रदत्त उपमानों का सहारा लिया है, जिससे काव्यत्व अत्यंत निखर उठा है:-

- **कमल का उपमान (गाथा 81):-** गृहस्थ को घर में रहते हुए भी कमल के समान अनासक्त (जल से भिन्न) रहना चाहिए।
- **भ्रमर का उपमान (गाथा 81):-** धर्मकार्यों में इस प्रकार तत्पर रहना चाहिए जैसे भ्रमर फूलों के रस के लिए लालायित रहता है।
- **व्यावहारिक बिम्ब विधान :-** मूर्ख की संगति की तुलना दीपक के पतंगे , गंध के लोभी भौंरे और स्वाद की लोभी मछली से की गई है , जो अपनी ही वासना के कारण मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

❖ **निष्कर्ष**

समग्र रूप से अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट होता है कि आचार्यश्री वसुनन्दिजी मुनिराज विरचित **'सज्जन-वचन-विलास'** केवल सूक्तियों का संग्रह मात्र नहीं है , वरन् यह व्यावहारिक जैन दर्शन की एक अनुपम आचार -संहिता है। यह ग्रन्थ आध्यात्मिक जीवन को शुष्क क्रियाकाण्ड से बचाकर उसमें करुणा, वात्सल्य, परोपकार, सत्य और संयम का प्राण फूँकता है। विद्यार्थी के लक्ष्य से लेकर, गृहस्थ के दाम्पत्य सुख , शासक की न्यायप्रियता , और वृद्ध के समाधिमरण तक का यह सर्वांगीण विवेचन मानव जीवन को गरिमामय बनाने का एकमात्र प्रशस्त मार्ग है। प्राकृत साहित्य और जैन नीति-शास्त्र के क्षेत्र में यह ग्रन्थ एक अनमोल मणि के समान जाज्वल्यमान है।